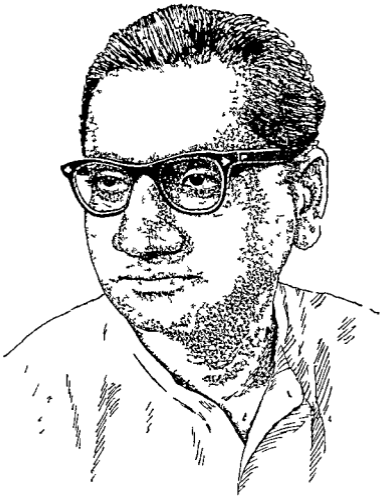


खुली रिक्झकिणं
वौडे रास्ते

● प्रकाशक
आर्यावर्त प्रकाशन गृह
सुजानगढ़ (राजस्थान)

● मूल्य—६)

● मुद्रक
भाताबीन डबारिया
नेशनल प्रिंट क्राफ्ट्स
६५ए, चित्तोजन एवेन्यू
कलकत्ता-१२



'खुली खिडकियां
चौड़े रास्ते' में
कुछ झाँकती अभिव्यक्तियां
और भटकती
अनुभूतियां हैं।
इन्हें उपलब्धियां
माना जाय या नहीं
इसका निर्णय
में पाठकों पर ही
छोड़ता हूँ।
चंद्र पूर्णिमा
वि० स० २०२४

दशरथ लाल शर्मा

7

महान विचारक
सत
बुलसी
को

क्षितिज

दिशा

निर्देश

१. दूढ़ कर अपने ही घूल भरे तट से	...	१
२. ये शानदार दो रुम थाले	...	२
३. दशित करवाता हूँ	...	३
४. जब दो बर्बादे रास्ते	...	४
५. तन्वगी रेखाओं के	...	५
६. बारजे की रेलिंग में लगी	...	६
७. विस्तार एक बोध है	...	७
८. दायित्वहीन आकाश पर	...	८
९. गहरे हरे मोजाइक में जड़े	...	९
१०. धुर उठा	...	१०
११. अभाव	...	[११
१२. मवि है अपने से ही	...	[१२
१३. उजाले के अन्तिम क्षण तक	...	१३
१४. गलत फासलो पर टँके	...	१४
१५. 'चुप' के विषादान में	...	१५
१६. क्षितिजों के वामन जादूगर	...	१६

दिशा		निर्देश
१७.	चित्र में देखा तुम्हें	१७
१८.	खरोंचे बाग	१८
१९.	रास्तों के दांत नहीं	१९
२०.	तालाब सूख गया	२०
२१.	सूरज नंगा है	२१
२२.	ये हैं किराये के मकान	२२
२३.	मेरे कमरे में ठहरे	२३
२४.	अध सोये अंगारो के गाल पर	२४
२५.	कितने ही शब्द	२५
२६.	मुझे बण्ड दो	२६
२७.	समूचे प्रेम पत्र को अपेक्षा	२७
२८.	शेप हुआ समारोह	२८
२९.	सो में स्वयं को नकारता हूँ	२९
३०.	शरद की ठिठुरती सुबह को	३०
३१.	जूड़े में खौंसा फूल	३१
३२.	कल एक ओर बीमार चांद	३२
३३.	मलयानिल की पंच पुष्प जड़ी छड़ी	३३
३४.	तुमने चुने	३४
३५.	जब भी दूटेगी	३५
३६.	पहुँच चुका हूँ	३६
३७.	तुम्हारा विश्वास	३७
३८.	टाईपिस्ट चांद	३८
३९.	परिधि ने तोड़ा मुझे	३९
४०.	एक उत्तेजना के बिना	४०
४१.	चेहरों पर उगे	४१
४२.	आँधो मुट्ठियाँ भींच कर कसें	४२
४३.	चेहरों के प्रेम में	४३
४४.	रंगीन ऐनक की कुँची से	४४
४५.	नौजवान तालाब को	४५
४६.	शून्य के लिये	४६

दिशा		निर्देश
४७.	घंटों बंठ कर सोचते रहे	४७
४८.	मैं अन्धा वर्तमान	४८
४९.	छोक की मीठी महक	४९
५०.	बरवाजे और लिङ्कियाँ	५०
५१.	बुबली पतली	५१
५२.	जिस क्षण हुआ जन्म	५२
५३.	कल तक डराता रहा जो	५३
५४.	निकल जाता यों ही	५४
५५.	मत छिड़को	५५
५६.	दूर्वा भंडित प्रान्तर में	५६
५७.	मंजिलें दरवाजो पर ही	५७
५८.	दिन दोपहर में भी	५८
५९.	विन्दु जनमता है	५९
६०.	रात की आँख के तारे की तरह	६०
६१.	स्त्री पुरुष की तरह	६१
६२.	बेचारे मकान	६२
६३.	क्रिया की नहीं	६३
६४.	बाहर की बेहद गरमी से	६४
६५.	सिर के खेत में	६५
६६.	कहाँ रोपूँ	६६
६७.	फँसकर झंझा के झंझ में	६७
६८.	रास्तो की रस्सियों से	६८
६९.	कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं	६९
७०.	हम तो अर्द्ध विराम हैं	७०
७१.	अभाग्ये इन्सान की मुद्रियों में	७१
७२.	संघम पालन की शपथ लेने	७२
७३.	बेचारे सत्य	७३
७४.	घटनाओं की फूहड़ घोबिन ने	७४
७५.	लार की तरह	७५
७६.	कान्धों पर लादे	७६

दिशा		निर्देश
७७.	केवल आदमी ही	७७
७८.	पीटते रहो अनस्तर	७८
७९.	जो पके	७९
८०.	ठहर जाय जो नीर	८०
८१.	बुख चिर सहचर है	८१
८२.	बढती उम्र	८२
८३.	नोच नोच कर	८३
८४.	उखाडो गडे हुये खेमें	८४
८५.	मैं जीवन भर	८५
८६.	बेचारा समय क्या करे	८६
८७.	कर दिया है ज्ञान को	८७
८८.	संशय-शमी पर	८८
८९.	समाज ने मुझे	८९
९०.	हर एक दुश्चरित्र	९०
९१.	गोरी ठिगनी औरत प्राग का	९१
९२.	विरासतें	९२
९३.	चटक रगों वाले	९३
९४.	ये तारे	९४
९५.	काश ! हम खाली कर सकते	९५
९६.	गुम्बज की नाक के नीचे फंला	९६
९७.	अन्धड से प्रताडित	९७
९८.	अब हुई है चिन्ता	९८
९९.	दावात में स्याही की तरह	९९
१००.	लील गई सब	१००



शुभं शिवं किं
वैराग्ये

कूद कर
अपने ही
एकान्त के तट से
तरंता हूँ विचारो का समुद्र ।
जानता हूँ
बने हुये हैं
सिद्धान्तों के अनेक
भव्य राजघाट
बँधी है
किनारी से
परोपजीवी पंढी की नावें
जो क्षण में
पहुँचा देती उस पार ।
पर
छीन लेती हूँ
सोचने की प्रिया का आनन्द
विचार में आकठ डूबने का सौभाग्य
इन में बँठकर
पार जाने वाले बेचारे
रह जाते हूँ बन्द के बन्द ।

ये शानदार शो रुम वाले
प्रतिष्ठान
बेचते हैं केवल वर्तमान
बुल्लभ हैं इनकी लिस्ट में
तुम्हारे इष्ट के दर्शन ।
तुम टूटे पहिये वाले
वृषभ रथ के स्वामी
इनके स्टॉक में है अणुगामी
चन्द्रलोकी यानों के पार्ट्स
सोजो किसी कबाडखाने में
भूतकाल के विलुप्त आर्ट्स
या फिर किसी अजायबघर में
क्रमिक विकास के सन्दर्भ स्वरूप
सुरक्षित है
तुम्हारा इच्छित !

दक्षित करवाता हूँ
स्वयं को
भीम भुजगो से
जिस से कि
मुक्त हो सकें वे
(भले ही क्षण भर के लिये ही)
अपने गर्ल से ।
पहुँच सके मेरे अमृत का अंश
उावे घटा के गले में भी
बदल जाय शायद
उनकी भाषी पीड़ी
बन जाय वह
निर्विष अमृतमय ।

जब दो क्वारि रास्ते
करते हैं परस्पर भ्रान्तिमन
तो पंदा होते हैं चौराहे
इन चौराहों को कोई दोगला नहीं कहता ।

जब दो उफनते बरिया
मिलते हैं डालकर गलबाही
तो जन्म लेते हैं द्वीप
इन द्वीपों को कोई वर्णसंकर नहीं कहता ।

जब दो भूखे शरीर
लाँघते हैं समाज को रेखाएँ
तो पंदा होती हैं समस्याएँ
इन समस्याओं के शीर्षक हैं 'दोगला' 'वर्णसंकर' ।

तन्वगी रेखाओं के
घुटने तोड़ कर, याहें मरोड़ कर,
गवनें दबोच कर,
अपने ध्यचेतन मन की अतृप्तियों के
जिन बिम्बों को तुमने
इन्हें ग्रहण करवाया है,
यह सब इतना सहज है कि
बलात्कार को भी
कला कहने का मन होता है ।

बारजे की रेलिंग में लगी
लोहे को कठोर जाली से
टकरा कर
हेमन्त की सन्दली धूप का कोमल हृदय
टुकड़े टुकड़े होकर
कमरे में बिछी कालीन पर
बिखर गया है ।
गृहपति की पालतू बिल्ली
कलेजे के उन टुकड़ों से
अपने ठिठुरे कलेजे को सटाकर
गरमा रही है ।

विस्तार एक बोध है
जो स्वयं में सिमटा हुआ है ।
बोध एक अविरोध है
जो चेतना से लिपटा हुआ है ।
सत्य एक क्षितिज है
जो छुआ नहीं जाता है ।
क्षितिज एक अर्पाह्वज है
जो उठ नहीं पाता है ।
शब्द एक छल है
जो अभिव्यक्ति से किया जाता है ।
छल एक जगल है
जिसमें व्यक्ति अपने को छिपाता है ।

दायित्वहीन आकाश पर
 दिशाए धोपने का परम्परागत हठ
 दुर्भाग्य से भूगोल का एक पृष्ठ बन गया है ।
 कहीं से भी नहीं उगने वाले
 बेचारे सूरज को रोज जबदस्ती पूरब की
 हथेली में उगाकर
 बर्बर पच्छिम के पंरों तले रौंदने के लिये
 डाल दिया जाता है ।
 चौड़े प्रकाश को घेरहमी से
 लिडकियो और दरवाजो के तेज धार वाले
 चाकुओ से
 क्षत विक्षत कर ही घरों में आने दिया
 जाता है ।
 पर्दानशीन रात को बेपर्द करने के लिये
 चकमक से अणुतक की हथफेरी को
 बेहया इन्सान अपनी सभ्यता की कहानी
 बतताता है ।
 इन सारे झुटलाये गये सत्यो के सन्दर्भ में
 बिस्तुईया की कटी पंछ सी मेरी प्रकेली
 चेतना की
 क्षण जीयी तडपन भी मुझे भली लगती है ।

(६)

गहरे हरे
मौजाइय में जडे
सीपी के दमकवार बाने बडे
अधलिली बेले की फसियो से
बिसते हं सुहाने बडे
ग्वाशों की राह से
पदां पर पडे
मुनहली तितलियों से लागते हं
हेमन्ती धूप के टुकाडे ।

धुर उठा

पक हटा

सशय का

भय का

क्षण आया

निर्णय का ।

घूमे फिरे पहिया

रथ का

अन्यथा तू

छप बेसी शल्य

मुझ में जो कर्ण

उसका द्वेषण ।

अभाव
चेतना तक पहुँचने का
एक मात्र द्वार है,
इसी के माध्यम से
दीखता है जो
वही आर पार है ।
तुम्हारी आँखों में
इसके प्रति
जो तिरस्कार है,
अपने प्रति
जो अहकार है,
यह भी
इसे स्वीकार है ।
क्यों कि यह
जानता है कि
बोध तक पहुँचने का
यह भी
एक प्रकार है ।

यदि है
अपने से ही
अपने को
बडा देखने का
व्यामोह,
तो
उगते सूरज को
पीठ दो
ढलते सूरज का
दीठ दो ।

उजाले के
अन्तिम क्षण तक
देखता रहा एकटक
तुम्हारी आँखों की मूट्टी में बन्द
उस कुनमुनाते भेद के खुलने की राह
जायद जिसे प्राप्त कर
पहुँच जाता मजिल पर
मेरा भटका हुआ प्रश्न !
पर अब

जब
अन्धेरे के हाथों से
ढाँप लिया है तुमने अपना मुँह
तो मेरे समक्ष रह गया है
यही एक विकल्प
जोड़ता चलूँ उन सब टूटे
सन्दर्भों के टुकड़ों को
जो मेरे मन के आँगन में ही
इधर उधर छितरे हैं ।

गलत फासलो पर टँके
बटनो से निरयंक
अस्तित्व का क्या करें ?
इस उधेड़ बुन में फँसे
हम सब विवश हैं कि
एक दूसरे को अनुसरें
परम्परा के कचरे से
खोखलेपन को भरें
सीमाओं की कैंची से
असन्तोष को बतारें
अमरत्व की कल्पना करें
यथार्थ में मरें
और क्या करें ?

'चुप' के बियावान में
बैठ गई है आकर
आवाज की चिड़िया ।
थक गई
गीत की पाँखें
रूठ गई
सपन से आँखें
अब तो
उसके सगी है
बिना लहरो वाली
मौन की सदा नीरा नदी
धूप की धूल से
धरती की धाली माँजती
गूगी सुवह
नखत शिशु की
अगुली धाम कर आती
खामोश शाम
और और
एक अनकहा सत्य
जो शायद उसकी
सबसे बड़ी उपलब्धि है ।

क्षितिजो के
वामन जाबूगर
रोज उडते हैं
सूरज चाँद तारो के
बूधिये फबूतर
उजली फाली पाँखों से
भर जाते हैं
घरती के आंगन घर
बुहारती हैं पलकों
कभी उठ कर
कभी बँठ कर ।

चित्र में देखा तुम्हें
बांधे हुए रेखा तुम्हें
पर कहां ?

केवल वहां—
पहचान मेरी आंख की
प्रेम में बन्दी विवश
कहती मुझी पर खा तरस
'मैं' को स्वयं ही 'तुम' बना
सीखा कहां यह देखना ?

(१८)

खरौंचें, दाग
और सलबटें
व्यक्तित्व के गवाह मात्र हैं
स्वयं व्यक्तित्व नहीं !

रूप, रंग
और गन्ध
अस्तित्व के सगी भर
स्वयं अस्तित्व नहीं !

स्वर, शब्द
और अक्षर
कृतित्व के निरे सांचे हैं
स्वयं कृतित्व नहीं !

रास्तो के बांत नहीं
द्विर भी वे एक दूसरे को काटते हैं ।
इसलिये नहीं कि
उनमें कोई तगडा है
अथवा एक कोई कमजोर
तो दूसरा कोई तगडा है
पर इसलिये कि
एक दूसरे को काटे बिना
टुकड़ों में बाँटे बिना
वे उन उतावले पाँवों को
मजिल पर नहीं पहुँचा पाते
जो थोडा चल कर ही थक जाते हैं
और भटक जाने की शिकायत करते हैं ।

तालाब सूख गया
पर लहरो की गठन
धूल पर अकड़ कर बँठी है,
तरलता के सपने को
अपनी जड़ता में जकड़ कर ऐंठी है,
इसी जिद की बीमारी को
आदमी अपनी भाषा में
संस्कृति कहता है ।
वर्तमान में उसे जीता है
पर आदत के मारे
अतीत में रहता है ।

सूरज नगा है
घिजलियाँ घूंघट निकाले हैं
तना निर्लज्ज है
डालियाँ अथगुठन डाले हैं
समुद्र भालसी है
नदियाँ रयानगी लिये हैं
सत्य बासी है
सपने ताजगी लिये हैं ।

ये हैं
किराये के मकान ।
इनकी हर कोठरी
हर दुकान
किसी न किसी
किरायेदार की ब्याहता है ।
यदि कोई अनब्याही है
तो उसकी नाक में
ताली की नथ पिन्हाई हुई है ।
इन मकानों की छतें ही
केवल द्रौपदियाँ हैं
जो समान रूप से
सब किरायेदारों की भोग्या हैं ।

(२३)

मेरे कमरे में ठहरे
गहरे झन्धेरे के पास
न तो कोई चाँद है
झीर न कोई सितारा ।
मैं तो बेयल रग से ही
उसके रूप को पहचानता हूँ ।

अध सोये

अगारो के गाल पर

चिकौटी काट कर

झोका एक नटखट

शिशिर समीरण का भागा ।

पय में लाठी टेक कर खड़े

बृद्ध नीम से टकरा कर

लडखडा गया अभागा,

गालियो-सी दस बीस पत्तियाँ

बरस गईं एक साय बेचारे पर ।

(२५,)

कितने ही शब्द
गूंगो की तरह
अपना अभिप्राय नहीं बता पाते हैं ।
आवतत ही ये
अधरो की गली से चल कर
बानो के कूचे तक आते हैं
और निरर्थक गुल-गपाडा मचाकर
नौ दो ग्यारह हो जाते हैं ।
ऐसे गूंगे शब्दों का पीछा
वे ही शब्द धरते हैं
जो सचंथा बहरे हैं
जिन्हें अधरो की निरी हरफत ही
घोबन्ना कर देने के लिये काफी है ।

मुझे बण्ड दो
मंने बिना पूछे
तुम्हारे रूप को
अपने स्वप्न में उगाया है ।

मुझे प्रताड़ित करो
मंने बिना धड़े
तुम्हारे गीत को
अकेले में बुहराया है ।

मुझे धन्यवाद दो
मंने मुझ से भी बड़े
किसी अपराधी के लिये
तुम्हारी क्षमा को बचाया है ।

(२७)

समूचे प्रेम पत्र की अपेक्षा
एक कटी हुई पक्ति
अधिक अर्थ पूर्ण है ।

सपूर्ण चित्र की अपेक्षा
एक अनसिची रेखा
अधिक कला पूर्ण है ।

पूरे स्वप्न की अपेक्षा
एक खण्डित सत्य
अधिक तथ्य पूर्ण है ।

(२८)

शेष हुआ समारोह
श्रवरोह पर पहुँच गया श्रारोह ।
क्षण भर पहले
दर्शक थे जो
अब बने भीड़,
मंडप के द्वार का
रूँघ गया गला
जोयन में उतरेगी
कब मच्च की कला ?

तो मैं स्वयं को नकारता हूँ ।
आज तक व्यवहार की तश्तरी में रख
मंते जो दिये थे तुम्हें स्वीकृति के घीसे
थे तो केवल तुम्हारे नकार को
झुठलाने भर के लिये थे ।

यदि तुम उन्हें
अपने व्यक्तित्व की उपलब्धि मानते हो
तो मैं यही कहूँगा कि मुझे
अपना वर्णन समझने की भूल मत करो ।

तो मैं स्वयं को स्वीकारता हूँ ।
आज तक यथार्थ के पेपरवेट के तले दबा
मंते जो रखे थे तुम्हारे जीवन के उडते पृष्ठ
वह तो केवल तुम्हारे बिलराय को
समेटने भर के लिये था ।

यदि तुम इसे
अपने कृतित्व की महत्ता समझते हो
तो मैं यही कहूँगा कि मुझे
अपना विज्ञापन समझने की भूल मत करो ।

शरद की ठिठुरती सुबह को
पहना दिया सूरज ने
धूप का स्येटर ।
ममता मयी सुबह ने
घरती के नंग धड़ंग बच्चों को
समेट लिया
अपने भीतर ।

(३१)

जूड़े में खोसा फूल
अनजाने ही निकल
गिर गया प्राङ्गण में
खुली नहीं सामोशी की आंस,

शिदु हथेली धरो अठग्री
अचानक ही फिसल
गिर गई फर्श पर
चीखे बिना नहीं रह सका वातावरण !

(३२)

फल एक और बीमार चाँद
अन्धेरे के एजिा के तले दब कर
मर गया
दुर्घटना को अमायत वह कर
रपट नहीं लिखी गई ।

(३३)

मलयानिल की
पच पुष्प जड़ी धड़ी
घुमाते भाते
गुद यसन्त को बेल
लिखने लगे
आम्र नीम शिशु
पल्लव की पाटी पर
मंजरियो के अक्षर ।

बुहराता है कोविल
'क का कु कू' ।

तुमने चुने
लिने मन से
अपने फूल,
सहमी शाखाएँ हिचे मूल ।
या ही भविष्य को नीचेगा
निर्वृंद पिनासी यत्मान
तो होगा भी क्या
दिन्दु विश्वास का नव विहान ?

जब भी
टूटेगी बंधी बीठ
तो वीखेगा वह
जो धा झदीठ
जिसको ये
अब तक दिखे पीठ
शायद हो सबका
वही ईठ !

पहुँच चुका हूँ
अनेक बार
निष्कर्षों तक
उधार उधार
ध्यवहार की परतों ।
देख चुका हूँ
ययार्य का चेचक रू चेहरा
फिर भी
तुम्हारे शयनागार में लगे
आदमकद आईने में
निहार अपना मुखौटा
उठा लेता हूँ
अनायास ही शतदशनी कँधी
और केश संवारने के बहाने
ताकता रहता हूँ उसको
जो मैं नहीं हूँ ।

(३७)

तुम्हारा विश्वास
मेरा धर्म बन गया
क्योंकि मैं विश्वासहीन था ।

तुम्हारा विराम
मेरा तीर्थ बन गया
क्योंकि मैं लक्ष्यहीन था ।

तुम मेरी
इस विडम्बना को समझते हो
यही तुम्हारा ईश्वरत्व है ।

टाइपिस्ट चाँद
दिवस-कागज के नीचे
रात का फायन-पेपर घर
समय-टाइप के कौ-बोर्ड पर
अंकित नसत-अक्षरो पर
किरण-अंगुलियाँ चला
सूरज के लिये आमन्त्रण-पत्र टाइप कर चुका है,
ब्लर्क आकाश ने उसे
ऊप्रा के गुलाबी लिफाफे में बन्द कर
दिशा चपरासिन को दे दिया है ।

परिधि ने तोडा मुझे ।
जोडा मुझे इति के अचित्ते बोध से ।
बाँधा कठिन शब्दरोध से
या कि मृदु अनुरोध से
परिधि ने मोडा मुझे ।
छोडा मुझे अन्धे ग्रहम् के कूप में ।
बाँधा मुझे अनुहप में
आकार में फिर रूप में
अथ परिधि को मैं तोडता ।
निज को अखिल से जोडता ।
मेरा तिरोहित 'तू' हुआ
फिर पूण ने मुझ को छुआ ।

(४०)

एक उत्तेजना के बिना
स्वयं के अस्तित्व की प्रतीति
कितनी सदेह पूर्ण है !

एक समवेदना के बिना
अपय की उपस्थिति
कितनी क्रूरतापूर्ण है !!

एक लक्ष्य के बिना
भीड़ का नेतृत्व
कितना मूर्खतापूर्ण है !!!

(४१)

चेहरो पर उगे
अजनबीपन को छीलते छीलते
बेचारी झालों का पनापन कम हो गया ।
अब तो हर एक परिचय
अपरिचय सा लगता है
झालों क्या हुई बस
एक बहम हो गया ?

आप्रो
मुट्टियाँ भींच कर फसें
अपनी ढीली ढाली नसें
श्रीर फिर तलाशें
अपने उन प्रयासों को
जो कल धूल में मिल गये थे ।
शापद उनमें से किसी ने आज
जमाती हो जड़ें
उस क्वारी धरती पर
जो नम हो गई थी
हमारे पवित्र पसीने की हार्दिकता से ।

(४३)

चेहरो के क्रम में
काल्पनिक परेशानियों की
नंगी भीड़ी तस्वीरें मँडकर
सहानुभूति की सपानी माहकिल फो
ठगने का प्रयत्न निरर्थक है ।
यह जानती है कि
वास्तविक समस्याएँ
कलात्मक अभिव्यक्ति लिये होती हैं ।
उन्हें खरीदने का धर्म
धपने दण्ड को बेच देना है ।

रगिन ऐनक की कूची से
पोतता हूँ घातावरण की सादी बीवार ।
घड़ी के आरे से काटता हूँ
हर क्षण को सुघिषा के अनुसार ।
सिगरेट के धुएँ से
उगाता हूँ गजे आकाश के तिर पर बाल ।
खुरदरे सयालों को झुठलाता हूँ
तहाकर अपना रेशमी रुमाल ।

मीजवान तात्ताव को
न तो मोतियाबिंद ही हुआ है
न रत्तीपी
वह तो कीचड़ की बबारी बन्या बाई का
मेंहदी रजित हाथ चेहरे पर धरे
मुख से सोया
प्रणम के मोटे सपनों में खोया है ।
सतह पर तैरती इक्की-बुक्की कमसिनियाँ
बोमलागी बाई की घग्गुलियों में पहनी
पुखराज और मानिक की झग्गुठियाँ हैं ।

(४६)

शून्य के लिये
मैं ही वातावरण हूँ ।
शून्य मुझे ही ग्रहण करता है
और मुझ से ही अपने को भरता है
मेरी खिडकी के सामने शून्य
खिडकीनुमा बन कर आता है ।
मेरे आगमन में शून्य
चीकोर बन कर उतरता है ।
शून्य के लिये मैं ही अनुकरण हूँ,
शून्य मुझ से ही प्रभावित है,
शून्य मुझ में ही समाहित है,
शून्य के लिये
मैं ही शरण हूँ
मैं ही आवरण हूँ ।

घटो बंठ कर सोचते रहे
समस्याओं के बारे में
जब उठ कर चले
तो पीछे छोड़ गये
अबंघ सतान ता असहाय घुम्राँ ।
स्मृतियों से छितरे हुए
मूगफली के छिलके
खण्डिता नायिका सी
भू लण्डित बीडियाँ ।

मैं अन्धा घतमान ।
अथ जय कि
भर गया है हमरे में अन्धेरा
दियासलाई टटोलता
ताक तलाशता
दराज खोलता
मिलर गई ठोकर से स्याही
टूट गया गिलास
गिर गई शीशी
सधमुच अपनी इस भादत से
बेहद परेशान ।
क्या करूं
मैं अन्धा घतमान ?

(४६)

छोंक की मीठी महक
रसोईघर से
बराबदे में आ गई ।
मेरा ध्यान अलबार से
रसोईघर में चला गया ।
हम अनजाने ही एक दूसरे के
पूरक बन गये ।

दरवाजे और खिड़कियाँ
 बिलकुल लडके और लडकियाँ !
 ये दरवाजे
 हर आने जाने वाले से
 खुले दिल से मिलते हैं,
 जब कभी लेते हैं शपकियाँ
 तो जाग जाते हैं बिना नाराज हुए
 पीठ पर खा कर किसी की शपकियाँ ।
 ये खिड़कियाँ
 खेलती रहती हैं आँख मिचौनी
 जैसे हो शरभौली लडकियाँ,
 जब कभी तेज हवा देती है इन्हें खिड़कियाँ
 तो ये नाजुक मिजाज छोकरियाँ
 लेने लगती हैं हिचकियाँ ।
 दरवाजे और खिड़कियाँ
 बिलकुल लडके और लडकियाँ !

दुबली पतली
शावारा गलियाँ ।
बेचारे गरीब भनपढ़ बाप-भाँव की लडकियाँ,
नहीं बंधी हैं चमकीले तारकोल से इनकी चोटियाँ
नहीं पहने हुए हैं ये
फुटपाथो की सलवारें ।
नग घडग, मिट्टी में सनी
बेतरतीब घालो वाली गँवई छोरियाँ,
नहीं किया है किसी ने इनका सुन्दर नामकरण
पुकारते हैं लोग इन्हें जिस किस बेडगे नाम से
'गली भूतो वाली' 'गली पोपल वाली'
पर ये हैं कि हँस कर टाल देती हैं
बिना चढ़ाये त्योरियाँ ।
अल्हड, नादा, गयई छोरियाँ ।

जिस क्षण हुआ जम
उसी क्षण बिछुडा जनक से ।
बिना चरण लांघे
प्राचीरों परकोटे
कितने ही खाई खन्दक
छोटे मोटे
रुका वहीं
जहाँ कहीं
मिल गई चेतना उसको
बोला—' मैं घण्टा रव
करता हूँ
स्वत्व समर्पित तुमको ।”

कल तक
डराता रहा जो
बूंसरों को
घड़ी मेरा पालतू डर
भाज अचानक ही
हो गया हावी मुझ पर
और बोला गुरांकर
यदि चाहते हो खर
तो लौटाओ
बेर किये बगर
अपनी आंखों के द्वार से
ये सब आंसू
अपने ओठों के रास्ते से
ये सब मिन्नतें
जो तुमने छीन ली थी
उन असहाय भयभीत लोगों से
जो खी चुके थे अपना आत्म-विश्वास
तुम्हें एक वैविक विपत्ति समझकर ।

निकल जाता यों ही
पर कुछ
परिचित शब्दों ने
पकड़ लिया,
पद्यताता हूँ अब कि
सँपेरे शब्दों से
परिचय ही क्यों किया ?

(५५)

मत छिड़को
मुट्ठी भरे बीजो को
एक ही जगह,
शहर उग आयेगा
एक दूसरे के द्युवितत्य को
भीड़ छा जायेगी ।

(५६)

दूर्वा मंडित
प्रान्तर में
सरगोश की तरह
पिछले पंरों से
छलांगता हुआ
चंचल निशंर ।

बालुका वेष्टित
निविड़ मर में
फछुए की तरह
रंगता हुआ
भ्रालसी पोखर ।

स्वितियाँ ही
अभिव्यक्तियाँ है !
अभिव्यक्तियाँ ही
प्राकृतियाँ हैं !!

मजिलें दरवाजो पर ही
तुडवा देती हं
रास्तों के पाँव ।
फल मूलसे मिलने को
झटक देते हं
शाखाओं की बांह ।
वाने परिणति पर पहुँच
घटवा देते हं
फसलो के घठ ।
शिक्षाएँ दीप्ति की लिप्ता में
बना देती है
समिघाओ की राख ।
सन्दभं के प्रति
उपलब्धियो के निर्ममत्व ने ही
रचा है
काल्पनिक मौलिकता का व्यक्तिवादी इतिहास
जिसके रगमचीय पृष्ठो पर
कृतघ्नता, पहनकर क्षमता का भौंडा मुखौटा
उडाती है उन आकठ दबी नीवो की हँसी
जिनके चौड़े कधो पर खडा होकर
सृजन का जिज्ञासाशील शिशु
नापता है
शून्य का अछूता विस्तार,
करता है
विराट का आकलन ।

दिन दोपहर में भी
 नंगी पड़ी जवान श्रुतुमती
 (पान के पीक से भरी)
 सड़को के जिस्म से
 चिपक कर खड़े हैं
 फतार की कतार
 निर्लज सफेदपोश मकान ।
 हर कमरे में है
 बलात्कार की बेइन्तहा बदबू
 हर चौराहे के मुँह से
 निकलती है गलियाँ—
 गालियों की तरह गन्दी ।
 नालियों के रुद्ध फोंठ में सड़ता है
 सिफलिस, हैजा, यक्ष्मा के
 मरीजों का भवाद, मल घोर वलगम ।
 शहर के मुखौटे घाले
 इस नरक के चारो ओर
 चक्कर काटती है
 एक भारी भीड़
 जो छूटपटाती है
 मकड़ी के द्वारहीन रेशमी तम्बू में
 फँसी हुई असहाय मक्खी की तरह
 पर छूटने नहीं देता है जिसे
 भूख को रेहन रखा हुआ पेट,
 व्यसन को उधार दिये गये पाँव ।

बिन्दु

जनमता है

लेकर वृत्त का कुण्डल

वह कर्ण नहीं है

फिर भी अतृप्ति को कुन्ती

मांगती है अस्तित्व का

सरक्षण ।

लहर

उमगती है

लेकर गति का पाथेय

वह गान्धारी नहीं है

फिर भी किनारे का धृतराष्ट्र

मांगता है अहर्निश

समर्पण ।

समुद्र

उफनता है

खींचकर मर्यादा की रेखा

वह पुरुषोत्तम नहीं है

फिर भी धरती को द्रुपदा

मुख में तृण दबा

मांगती है

शरण ।

रात की आँख के तारे की तरह
नहीं लग पाती है
शहर की आँख ।
एक वन्द भी हुई
तो दूसरी खुली
सच और सपने
कहते हैं एक दूसरे को
बुरी भली ।
सिर पर सवार
गति का पागलपन
कभी सोने का हुआ भी मन
तो तैयार मिले
खटमल, मच्छर के दशन ।
हर महल्ले में
बेचते हैं पानवाले भी
नोंद लाने वाली गोलियाँ
फिर भी स्नावयिक तनाव से
उत्पीडित शहर
करता है रोज आत्म हत्या
अपने ही किसी निरीह वाशिन्डे को
बना कर माध्यम ।

स्त्री पुरुष की तरह
शब्द भी एकान्त में नगे होते हैं,
कुछ शब्द निहायत शरीफ
कुछ लुच्चे लफगे होते हैं !

कुछ दुबले पतले
कुछ शब्द भले चगे होते हैं,
कुछ षडे सलीके याते
कुछ बदमिजाज बेंडगे होते हैं !

भ्रादमी की तरह
शब्द भी पूरे सामाजिक होते हैं,
इनके भी परिवार हैं
बाल बच्चे हैं नाती पोते हैं !

शब्द भी बंधे हैं
भ्रादमी की तरह रीति से, रिवाज से
इन्हें भी वास्ता रहता है
फल से, भाज से, लिहाज से !

इनमें भी द्विज, शूद्र,
कुम्हार, खाती हैं,
किसी भी रचना में देखिये
एक शब्द डुलहा है
बाकी सब बराती है !

बेचारे मकान
 अपने ही अहाते में बन्द हैं।
 समझने को तो ये समझते हैं कि
 हम इन के सरक्षण में
 सुरक्षित और निद्वंद्व हैं,
 पर सही बात यह है कि
 ये अहाते
 सीमेंट और ईंट के बोदे छन्द हैं,
 जो मकानों में बसी अनुभूति को
 अपने सफीर्ण माध्यम से गुजरे बिना
 अभिव्यक्त ही नहीं होने देते,
 ये बेचारी सकपकाती हाँफती सड़कें
 इनकी बेरहम गिरपत में
 इस बुरी तरह से जकड़ी हुई हैं कि
 जैसे कोई अपने झुण्ड से बिछुड़ी नील गाय
 निर्दयी शिकारी कुत्तों के व्यूह में फँस गई।
 जब जब भी किसी मोड़ पर मुड़ कर
 कोई सड़क ने इन से पिंड छुड़ाना चाहा है
 तब तब ही
 ये उस के साथ ही साथ लगे
 इस कदर तेजी से मुड़ गये हैं कि
 आखिर में थक कर
 गरीब सड़क को ही
 किसी चौराहे में धुस कर
 अपनी जान बचानी पडी है।

क्रिया की नहीं
प्रतिक्रिया की परिणति है
यह जीवन !
इसी विवशता से बंधा
बटोरता है अपने चारों ओर
एक ऐसा ऐंद्रजालिक दर्शन
जिस की हर कल्पित पूर्णता के समक्ष
खड़ा है कथा सिद्ध ब्रगुले की तरह
एक टांग से प्रश्न घाचक चिन्ह
जो खींच तो लाता है सतह पर
मन-सरोवर में तँरती
जिज्ञासा की घटुल मीनो जो
पर उसी पल उन्हें लील कर
उन जाता है अपने आप में एक उत्तर ।

(६४)

बाहर की बेहद गरमी से धूप
परमस के अपने नहें से वाता
घर में, लाल, पीली और सफेद
नायलोनी साड़ियाँ पहने
एक दूसरी से सट कर
बड़े मजे से बंठी हैं
कुछ नाजूक मिजाज आइस कैंडि
प्यास के मारे सूखते गले
मुरझाये भ्रोंठ
पयराये नयन
इनके हिम कठोर हृदय को
नहीं पिघला सकते
केवल चमकीले सिक्के की खनक ही
इहें इनके अतपुर से
बाहर ला सकती है,
इन का गदराया यौवन
उन गाँठ के पूरे स्वाद लोलुपो की थाती
जिनकी जीभ की चेतना को
तेज शराब और चटपटे मशाले
बहुत पहले ही नपुसक बना चुके हैं ।

(६५)

सिर के खेत में
पंदा होती है रास्तो की फसल
पांव तो काटते भर हैं ।

मन के करघे पर
बुनी जाती है मंजिल की मलमल
नयन तो तहाते भर हैं ।

उम्र की तराई में
फंला हुआ है मजबूरियो का जंगल
गीत तो गुंजाते भर हैं ।

(६६)

कहाँ रोपूँ ? मन के उखड़े बिरबे को
जिस से यह सगे
खिले, फूले, फले,
कब से हाथ में थामे
बँटा हूँ कलम ।
बस चारों ओर
ऊसर ही ऊसर
जड़ें काटने वाले
चूहों के विषर
या दो चार
भटकते डगर ।
सोचता हूँ
लौट चलूँ घर
वहीं रोपूँ
गमले में मिट्टी भर
इस उखड़े मन को ।

फँस कर
शाहा के शासि में
पथ हृये कुपय ।
गति ने जो साँपी पूजी
पद चिन्हो की
उसे उडा
तोडी कुल की शपय ।
अय क्या होंगे
माध्यम मजिल के
जो भूले
अपना ही इति-अय ।
पय हृये कुपय ।

रास्तो की रस्सियों से
(पडी हुई है जिनमें चौराहो की गाँठें)
बांध दिये गये हैं कस कर
बिखरे हुये घर-गाँव,
कस्बे और नगर
इत छोटी बड़ी गठरियो को ही
अपना असबाब समझ
मन का नादान मुसाफिर
लाता है इन्हें अपने पास
पाँव के मजदूर के सिर पर रख !

कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं
 जिसकी उजली कमीज पर
 आलोचना के छोटे पड़े नहीं !
 कोई ऐसी दृष्टि नहीं
 जिसकी नयन ब्यारी में
 सत्य के साथ सपने उगे नहीं !
 कोई ऐसा ज्ञान नहीं
 जिसने कुँआरेपन में
 किसी जड़ता से अर्थ सम्बन्ध किया नहीं !
 कोई ऐसा अर्थ नहीं
 जिसे अर्थो के ग्राहक ने
 शब्दों की रेजगारी से क्रय किया नहीं !
 केवल मानस की हंसिनी श्रद्धा ही
 रूप से घुली है,
 केवल क्रिया को विषयता ही
 फल को अनुरूपता से बंधी है,
 केवल साँसों की बन्दिनी वेह ही
 मरण के धृतराष्ट्र की गान्धारी है,
 केवल हृदय की संगिनी अनुभूति ही
 बेमोल सुटी है ।

हम तो अर्द्ध-विराम है,
पूर्ण विराम होने का झूठा दावा क्यों करें ?
हमारे आगे भी कुछ लिखा जायेगा
इस सभावना से तनिक भी क्यों डरें ?
अधिक से अधिक हम
प्रश्नवाचक चिह्न बनने की सोच सकते हैं
जिन्हें देख जिज्ञासाएँ जागती हैं
और विचार उभरते हैं !
हम तो केवल अल्प विराम भर हैं,
हमें अपनी पूर्णता का कोई बहम नहीं ।
हम यह डोंग क्यों हाँकें
हम ही अन्तिम हैं,
हम ही सही ।

अभागे इन्सान की मुट्टियो में
जबरन उगा दिया गया है
बन्दूको के कुन्दो का जगल ।
प्रतिबिम्बित होते हैं इस्पात की नलियो की चमक में
पत्तो की तरह
चक्कर काटते गिट्टी के डंने,
गोलियो की झंझा से दोलित होकर
प्रति क्षण झरती हैं
ताजे रषत की घुंघचियां,
स्वेद से सने चेहरो की
काली पीली सफेद मिट्टी पर
उभर आयें है
उस अदृश्य भयपशु के
भारी भरकम नाखूनी पैजे
जो अभी अभी लाशो को सूंघता हुआ
घुस गया है
किनारे पर की नन्हें सौ बस्ती में ।

सयम धालन की शपथ लेने के लिये भी
संयोजित किये जाते हैं आयोजन ।
माइको पर से उद्घोषित किया जाता है
दिनांक, समय, स्थान का विज्ञापन ।
विशिष्टता के बोध से पीड़ित लोगों को
भेजे जाते हैं मुनहले अक्षरो में छपे निमन्त्रण ।
रिकाडों की सस्ती धुनों के चुम्बक से
खोंच लिये जाते हैं बेचारे साधारण जन ।
फिर इस अपेक्षित भीड़ का
करने के लिये नियन्त्रण
बुलाई जाती है पुलिस, फौज, पलटन ।

बेचारे सत्य
 चिरन्तन होते हैं ।
 अपने इस होने के लिये
 सिर धुन धुन कर रोते हैं
 और सोचते हैं कि
 काश ! हम भी
 उन सपनों की तरह होते
 जो नींद में जागते हैं
 और जागते में सोते हैं,
 जो इस थका देने वाले
 चिरत्व के शाप को
 अमरत्व के पाप को
 बातों ही बातों में
 यों उड़ा देते हैं
 जैसे उड़ते हावों के तोते हैं ।

बेचारे सत्य
 चिरन्तन होते हैं
 इस होने के बोझ को
 उस भजदूर की तरह ढोते हैं
 जो थक जाने पर भी
 चलने के लिये लाचार है
 क्योंकि भजदूरी
 किसी विशेष स्थिति तक
 पहुँचने का करार है
 जिस पर पहुँचे बिना
 सारा भ्रम बेकार है,
 बस यही हाल उन सत्यों का है,
 चिरत्व के भूत्यों का है,
 खाह कर भी
 किसी किनारे नहीं लग पाते
 खाते ही रहते गीते हैं
 बेचारे सत्य
 चिरन्तन होते हैं ।

घटनाओं की फूटड घोबिन ने
प्रतिकूलता के अनगढ
खुरदरे पापाणो पर
पीट पीट कर जीवन की कमीज,
तोड डाले हैं एक एक कर
विश्वास के सारे बटन ।
अब विवशता के गदराये यौवन को
संशय की हथेलियों से ढाँपने के सिवाय
चारा ही क्या है ?

सार की तरह
स्याही टपकाने वाले
फूहट फाउन्टेन पेन,
झूठे श्राद्धमी की शपथ सी
बार-बार टूटने वाली कचची पेंसिलें,
श्रक्षरो को पसीना, पसीना
धर देने वाले सड़े गले कागज,
ये सब इनाम में दिये गये
कक्षा में प्रथम आने वाले
मेधावी छात्र को ।
दर्शको ने तालियाँ पीटें,
सहपाठियो ने बधाई दी,
बालक ने गौरव अनुभव किया,
प्रदर्शन सफल ।
उपयोग सिर धुनता रहा ।

कन्धो पर लादे
समस्याओं की गठरियाँ
साथ में घसीटते
तक की मिमियाती बकरियाँ
अपनी धुन में
उधेडबुन में
मन की पगडण्डी पर
चले जा रहे
कभी खतम न होने वाले विचार ।
पता नहीं कहाँ
इन खानाबदोशों की मजिल ?
छींचे ले जा रहा
किन चरागाहों का आकर्षण ?

केवल आदमी ही
कर सकता है अपराध
आत्म-हत्या करने का
क्योंकि
उसने की है धृष्टता बनाने की
स्वभाव के विरुद्ध सिद्धान्त !

केवल आदमी ही
भर सकता है दम
भविष्य वाणी करने का
क्योंकि
उसके पास है सूत्रबुद्धि
वर्तमान को धोखा देने की !

केवल आदमी ही
कह सकता है आवरण को तहजीब
क्योंकि
उसीकी बपौती है
दूसरो को उधार कर देखने की !

पीटते रहो कनस्तर ।
पके धान पर
ठहर नहीं जाय कहीं
चिडियो के चचल पर !

खोले रहो ट्राजिस्टर ।
फच्चे फान पर
हके बिना जाय नहीं
कहीं कोई ताजा खबर ।

जो पके
झूठे ही लटके ।
झरें तो
डाल खुले,
कोई नया
फूल खिले,
फल निकले
काहे को झटके ?
चू लें टटके ।

ठहर जाय जो नीर
वही तो सर है,
जो जल छिर धम-शील
वही निरंतर है ।

यहाँ तत्त्व है गौण
क्रिया का अनुयायी सम्बोधन,
लोचन के दर्शन में चलता
वाणी का सशोधन !

(८१)

दुख चिर सहचर है
इस से विलग हो जाऊँ तो
जीना बूभर हो जाय ।

सुख सफर में मिला साथी है
इसके साथ ही लया रहूँ
तो मंजिल भटक जाय ।

बढती उम्र
आँखों की रोशनी में
फटौती कर रही है
यह जानते हुए भी
बार बार बचारी ऐनक को ही माँजता हूँ !

स्थूल समस्याएँ
सूक्ष्म विचारों की
उलझाये हुए ह
यह जानते हुए भी
बार बार गरीब बालों को ही कघी करता हूँ !!

(८३)

नोच नोच
अपने ही पख
हो गया खग
जब निपट अपख
तो हुआ बोध
शून्य की
सत्ता का
आज तक जिसे
नहीं पाया था जान
सिर्फ
भरता रहा उडान ।

उखाडो
 गडे हुये खेने
 कूच करो
 बजे तुरही
 पडे नगारे पर चोट ।
 चिन्तन नहीं
 शोषक सामन्त
 जो बना कर रहे
 महल बिले कोट ।
 चिन्तन नहीं
 पोतडो का अमीर
 जो खाये केवल
 बादाम पिस्ता अखरोट ।
 चिन्तन नहीं
 अवसरवादी नेता
 जो मांगता फिरे
 जिस किस तरह से वोट ।

चिन्तन तो है
 गाडिया लुहार
 घूमता है
 देश देशान्तर
 बनाता है नित नये औजार ।
 चिन्तन तो है
 अमशील मजदूर
 तोडता है
 पय के पाषाण,
 काटता है अगम गहरे कान्तार ।
 चिन्तन तो है
 चिर तरुण विद्रोही
 फिरता है
 हथेली में लिये सिर
 करता है आत्मघाती मान्यताओं पर प्रहार !

मैं जीवन भर
श्रम कर
एक चित्र बनाता हूँ
जिससे
तुम उसे
क्षण भर
देख कर
कह उठो
वाह, कितना सुन्दर है !

मैं जीवन भर
जप कर
एक मंत्र साधता हूँ
जिससे
तुम उठो
क्षण भर
सुन कर
कह उठो
वाह, कितना शिव है !!

मैं जीवन भर
तप कर
एक तत्त्व खोजता हूँ
जिससे
तुम उसे
क्षण भर
जान कर
कह उठो
वाह, कितना सत्य है !!!

बेचारा समय क्या करे ?
सब परिवार बीमार है,
बड़ी लडकी सुबह को सफेद कोढ़
मँझली दुपहर को पीलिया
छुटकी साँझ को काला ज्वर,
गरीब समय जिये या मरे ?
बड़े लडके सूरज को ब्लड प्रशर,
छुटका चाँद यक्ष्मा का मरीज,
पोत सितारे
नाको में दम है इनके भारे
लाचार समय क्या करे
बेचारा जिय या मरे ?

कर दिया है
ज्ञान को
दुर्बल, सशयप्रस्त,
अनुभव की तपेदिक ने ।
कम हो गये हैं
रक्त में
सहज अनुभूति के क्षण,
मरघट से लगते हैं
विस्मयहीन नयन ।
विस्मृत हो गया है
सृजन का उत्स
स्वाभाविक उत्तेजन ।
अब तो केवल
तक के पथ पर ही
अवलम्बित है
कुंठाओं की
अष्टवक्री देह ।
अस्वीकार चुका है
उन सब सत्त्यों को
जो हैं विवेह ।
स्वय को समझने की प्रक्रिया में
पकड़ लिधा है
अन्य को झुठलाने का रास्ता
स्वरति में ही
रह गई है
सिमट कर
आत्मघाती आस्था ।

सशय-शमी पर
 टांग कर आस्या-गाडीव
 श्राज बन गया बृहन्नला
 तुम्हारा कायर मन,
 दुहरायेगा क्या समय भी अपने को ?
 दब चुके हैं इतिहास के मलबे के तले
 थे भोग-क्लान्त राजपुत्र
 जिन्हें विद्वपकता से रिझा कर
 बिताया करते थे तुम
 अपनी आत्म-प्रवचना का काल,
 नहीं रहे हैं वे
 शोषणजीवी राजकुल
 जिनका नमक चुकाने के-
 विकृत संस्कार के बहाने
 त्यागना पड़े तुम्हें अपना क्लृप्त्य ?
 हापर की अभिनय पद्धति के लिये
 नहीं है उपयुक्त, रंच मात्र भी
 कलियुग का रंगमंच ।
 कहीं है इतना अतिरिक्त धैर्य और समय
 स्वेद अभ्रु रक्त से लपपप
 कमंरत जीवन के पास
 जो देख सके
 इतने अबाधित अंकों में
 तुम्हारी व्यक्तितगत कुष्ठाओं का नाटक ?
 अब तो यवनिका उठने के क्षण से
 पटाक्षेप तक
 सिर्फ पायं बने रह कर ही
 सिद्ध कर सकते हो
 अपने को लोकप्रिय पात्र ।

समाज ने
 मुझे एक फ़ेम दिया
 और कहा
 अपने व्यक्तित्व को
 इसमें फिट कर दो
 तुम्हें भी
 दीर्घा में टंगे चित्रों के बीच
 एक महत्वपूर्ण स्थान
 दे दिया जायेगा ।
 सकोच वश
 मैं इन्कार नहीं कर सका
 शशिष्टता के
 अपराध से बचने के लिये
 अपने को
 उस फ़ेम की साईज का
 बनाने में जुट गया ।
 अपना सिर
 चौखटे में दे ढर देखा
 विचारों की
 निर्भ्रम फाट-छाँट किये बिना
 सिर समाना मुश्किल था,
 अपना हृदय
 घेरे में अँटाने की कोशिश की
 विश्वासों को खण्डित किये बिना
 हृदय अँटना मुश्किल था,
 आखिर हार कर
 इस नतीजे पर पहुँचा
 इस जोड़ तोड़ की अपेक्षा
 यह अधिक सहज है
 पहले मैं
 आत्महत्या ढर लूँ
 फिर
 लोग ही मुझे उस फ़ेम में मढ़ ले ।

हर एक दुश्चरित्र
तुम्हारी कहानी का
श्रद्धा चरित्र बन सकता है !

हर एक बेवकूफ
तुम्हारे नाटक का
सफल विद्वपक बन सकता है !!

उपयुक्त उपयोग ही कला है;
सर्वोत्तम खाद वही है
जो सड़ा है, गला है !!!

गोरी ठिगनी औरत आग का
काला-कलूटा, लम्ब-तडग, बदचलन मर्द घुआं
जवानी की पूरी मस्ती में
घुंघराले बालों को लहराता
रास्ते में पड़ने वाले ऊँचे झरोखों में
ताक झाँक करता
जब पौ फटते ही अपने घर-चूल्हे से
आसमानी लॉन पर चहल कदमी करने के लिये निकलता है
तो उसकी माँ पाकशाला के छोटे बच्चे बरतन
फच्ची नौद में से जाग कर
इस तरह शल्लाते हैं कि
बगल में ही मेरी आँख सराय में ठहरे
परदेशी सपने झिझक कर उठ बैठते हैं
और हडबडी में पुतली-पलग पर बिछे
अपने स्मृति-बिछौने को वहाँ छोड़
भाग छूटते हैं ।

विरासतें
 हमारी गुजरी पीढ़ियों के
 कंधों पर चढ़ कर ही
 हम तक पहुँची हैं,
 इनमें से यदि कुछ बहुत ऊँची हैं
 तो कुछ निहायत ही टुन्ची हैं ।
 हम अपने कंधे
 इन सब को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने के लिये
 उधार देंगे या नहीं
 इसका निर्णय हमें ही करना है
 बरना हमारी गफलत से
 हमारे नहीं चाहते हुए भी
 ये सब यो की यो ही
 हम पर सवार हो कर
 आगे की मंजिल के लिये कूब न बोल दें ?
 अन्याया आने वाली पीढ़ी
 हमें सनकी समझ हँसेगी
 और कहेगी
 हमारे बड़े भले पुरखे
 अपने विचारों को कभी
 काम का बाना नहीं पहनने देते थे
 और बेचारे कामों को कभी
 विचारों का नमूना नहीं बनते देते थे ।

घटक रंगी घाले
सोफा सेंटो के कार्नर पिसेज पर धरे
केषटस के गमले
फडी पालिस से चमकते
शो केसेज में सजे भडकीले खिलौने
तिकोनी मेजो पर खडी
नमन युग्मो की प्रतिभाए
दीवारो पर चस्पां
मृत मृगियो के निरीह मुख
फ्रेमो में मेंढी
एक्सट्रेक्ट आर्ट के नाम पर
जल्दी सीधी लकीरें
एसट्रे में रखी
अधजली सिगरेट का टुकडा
रॉक एन रोल की टूरानिग पर
घिरकते पांव
यह है आधुनिक ड्राइंगरूम
अर्थात जिप्सियो का डेरा ।

ये तारे
आसमान के सूचना पट पर
घन्धेरे के हाथ से लिखी गई
सूरज की अनगिन आत्महत्याओं की
मनहूस तारीखें हैं,
आज की होने वाली शाम को
इन बेशुमार तारीखों के साथ
देखे अनदेखे ही
एक और नई तारीख जुड़ जाएगी ।
क्या कोई गणितज्ञ बतला सकता है
यह कौन सा दिन होगा
जब सूरज
आत्महत्याओं की निरर्थकताओं को समझ लेगा ?
सचमुच कभी ऐसा हुआ तो
उन असंख्य तृपित दीपों का क्या होगा
जिन के लिये सूरज की आत्महत्या का क्षण ही
स्नेह पान का क्षण है !

काश ! हम खाली कर सकते
अपनी धमनियो में से
परम्परा से चले आते
कसले बोदे रुधिर को
अन्तिम बंद तक ।
विमुक्त कर सकते
अपने हृदय की
रुग्णा करुणा को
वशागत प्रतिशोधो के
मुनियोजित चक्रव्यूहो में से
तोऽ. तो हम
सिरज सकते
एक ऐसे अनाम को
जो सहज ही उठा लेता
थकी हारी मनुष्यता के
क्षत विक्षत हाथो से गिरी
स्नेह की शाश्वत मशाल ।

गुम्बज की नाक के नीचे फंला
घोंकोर धांगन,
धांगन के हाथ से फंले
अधेरे गलियारे,
गलियारो की मुठ्ठियो से
बिजडित फाटक,
इस पाषाणी सृष्टि की
चेतना का प्रतीक एक प्रहरी
जिसकी आवाज को
डुहराने के लिये
गुम्बज विवश है ।

(६७)

अन्धड़ से प्रताड़ित
बालू के टीले
मुस्ता रहे हैं
सड़क पर टिका कर
अपना सुनहरा धूपन ।
गाड़ियों के टायरों ने
उभार कर चकत्ते
सरिसृप समुदाय में
कर दी है वृद्धि
एक घोर विचित्र जन्तु की,
सड़क पर फँला तारकील
इन भूरे मगरमच्छों के
मुँह से खवित लहू है
गाढ़ा और काला !

अब हुई है चिन्ता
तन्वंगो अनुभूति को
अपनी गिरती हुई सेहत की ।
छोड़कर सुक की तंग कोठरी
घा गई है गद्य के हवा महल में ।
फरने लगी है परहेज
सड़े गले दाबों के कलों से,
नहीं खाती है भूल कर भी
प्रतीकों के घासो समोसे,
बिम्बों को धाज्जार घाट
लेने लगी है सहजता का सुमधुर टॉनिक,
लीट आई है पुनः
भावनाओं के निस्तेज कपोलों पर हल्की सी साली,
स्फुटित होने लगे हैं
अभिव्यक्तियों के गुठित यक्षोज
रोज य रोज
घा रहा है एक अनुठा निखार
दूर से ही घूरते हैं बस थोड़े विचार
अपनी धावत से लावार
कभी कभार
कस बेते हैं फिकरे दो चार ।

(६६)

दावात में स्याही की तरह
आकाश और धरती के बीच में
भर गया है गाढ़ा अन्धेरा ।
अनगिन किरण-करोँ से
भावुक चाँद झुबा कर
अनगिन नखत-निब
लिल रहा है
क्षितिज के पन्ने पर
सुनहले सूरज का चन्दनिया गीत
जो उस ने अभी-अभी
पश्चिम से आने वाली
जवान हवाओं से सुना है ।

(१००)

लील गई सब
लहरें, मद्यतिपां,
सिंघाडे, शतदल ।
शेष रहा केवल
चिटखा हिय-तल,
चुक गया झील का
कला बोध
यामो फुदाली
रख दो सरोद ।

